International Journal of Scientific Research in Science and Technology
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X (www.ijsrst.com)
doi : https://doi.org/10.32628/IJSRST229516

बिहार में वामपंथी विचारधारा का विकास

बिन्दु भूषण सिंह

शोध छात्र, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

Article Info

Volume 9, Issue 5

Page Number : 588-593

Publication Issue

September-October-2022

Article History

Accepted : 01 Sep 2022

Published : 12 Sep 2022

ABSTRACT

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) की स्थापना के करीब चौदह वर्षों बाद 20 अक्टूबर, 1939 को मुंगेर में प्रान्तीय इकाई का गठन हुआ। उल्लेखनीय है कि कम्युनिस्ट पार्टी की प्रांतीय इकाई के गठन के लिए जो बैठक मुंगेर में आयोजित की गयी थी वह आहूत बैठक थी और इसे विजयादशमी के दिन आयोजित किया गया था। इस बैठक को विजयादशमी को ही आयोजित करने के पीछे भी बड़ा ही प्रमुख कारण रहा है। ये सर्वविदित है कि उस काल में अंग्रेजों का दमन चक्र जोरों पर था और अंग्रेजों को सर्वाधिक भय लाल भूत से था।[1] जाहिर सी बात है कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध लगा हुआ था और पुलिस कम्युनिस्टों के प्रति बराबर चौकस रहती थी। इसलिए पुलिस की पैनी निगाह से बचकर बैठक करने का दुर्गा–पूजा ही सबसे अच्छा मौका था जिसका कम्युनिस्टों ने फायदा उठाया।

गुप्त रूप से हुई इसकी बैठक में मुख्य रूप से राहुल सांकृत्यायन, सुनील मुखर्जी, ज्ञान विकास मैत्र, विश्वनाथ माथुर (गया), अली अशरफ (पटना), विनोद बिहारी मुखर्जी बिहारी मुखर्जी, श्यामल किशोर झा (सहरसा), अनिल मैत्रा, शिव वचन सिंह (सारण), कृपा सिन्धु खुटिया (हजारीबाग), शरत पटनायक, बी.बी. मिश्रा, हबी बुर्रहमान, पृथ्वीराज, दयानन्द झा, नागेश्वर सिंह, चन्द्रमा सिंह, अजीत मित्रा, रतन रॉय ने भाग लिया।[2] इस बैठक में ऐसे ही देशभक्तों की टोली जुटी थी जो अँग्रेजी हुकूमत की जंजीरों को तोड़ डालने के लिए व्याकुल थी, जो बमों और पिस्तौलों से हुक्मरानों की नींद हराम की थी, जो जेल की कठिन यातना में तपकर खरा सोना बन चुकी थी, असहयोग आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा ले चुकी थी और जो अब इस निष्कर्ष पर पहुँच चुकी थी कि शोषित, पीड़ित जनता की मुक्ति, मजदूर–किसानों के शोषण का खात्मा एवं देश की आजादी का एकमात्र रास्ता मार्क्सवाद, लेनिनवाद पर आधारित वैज्ञानिक समाजवाद है फिर भी बैठक में सभी को पूरी सदस्यता नहीं दी गयी। कुछ को उम्मीदवारी सदस्यता ही दी गयी जिसमें नागेश्वर सिंह एवं रतन रॉय थे। बैठक में पार्टी के केन्द्रीय नेतृत्व की ओर से पोलित ब्यूरो भाकपा के सदस्य श्री रूद्रदत्त भारद्वाज ने पर्यवेक्षक के रूप में भाग लिया। इसी बैठक में पाँच सदस्यों की एक प्रान्तीय संगठन समिति बनायी गयी जिसमें श्री सुनील मुखर्जी, पंडित राहुल सांकृत्यायन, ज्ञान विकास मैत्र, अली अशरफ एवं विश्वनाथ माथुर चुने गये और श्री सुनील मुखर्जी जो बंगाल के कम्युनिस्टों के सम्पर्क से जेल में ही कम्युनिस्ट बने थे, इसके सचिव बनाये गये।[3]

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

बिहार में 1939 के पूर्व भाकपा नहीं बनने के कारण :

यहाँ सवाल यह उठ खड़ा होता है कि पूरे भारत में जब भाकपा की स्थापना 1925 में ही हो चुकी थी, जिसके तुरंत बाद ही बंगाल, केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र इत्यादि राज्यों में भाकपा की प्रान्तीय कमिटियाँ बन चुकी थी तो फिर बिहार में प्रान्तीय कमिटी 14 वर्षों के बाद क्यों बनी, सवाल स्वाभाविक भी है। इसके जवाब के लिए जब इसकी पृष्ठभूमि पर हम गौर करते हैं तो पाते हैं कि 1934 ई. में काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ था।

काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गठन के पश्चात् भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी एवं काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बीच एक समझौता हुआ। इस समझौते के तहत हिन्दी भाषी क्षेत्रों तथा वर्तमान उत्तर प्रदेश, बिहार में भाकपा की स्थापना नहीं की जायेगी और यहाँ के कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में रहकर काम करेंगे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के मेरठ प्रस्ताव मार्क्सवाद–लेनिनवाद के सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया गया था जो कम्युनिस्ट एवं कांग्रेस सोशलिस्ट की एकता का आधार बन सकता था।[4] काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव जय प्रकाश नारायण और आचार्य नरेन्द्र देव जैसे कुछ अन्य नेता कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं के साथ वैज्ञानिक समाजवाद के आधार पर एक ही संयुक्त पार्टी के निर्माण की बातें कर रहे थे। मगर काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का एक दूसरा हिस्सा भी था जिसमें प्रमुख थे अशोक मेहता, मीनू मसानी इत्यादि जो एकता के साथ–साथ कट्टर सोवियत विरोधी थे। फलतः काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में घोर कशमकश बना हुआ था।

कृष्णाचंद्र चौधरी भी हालाँकि कम्युनिस्ट पार्टी के बिहार में नहीं बनने का कारण, भाकपा महासचिव पी.सी. जोशी एवं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (कांसोपा) के तात्कालीन महासचिव श्री जय प्रकाश नारायण के बीच हुए समझौते को ही मानते हैं। मगर श्री चौधरी का मानना है कि जय प्रकाश नारायण ने काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन गाँधीजी के वरद्हस्त से इसलिए किया कि काँग्रेस से हटकर सीधे कम्युनिस्ट पार्टी में लोग नहीं चले जायें। इसलिए काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन काँग्रेस एवं कम्युनिस्ट पार्टी के बीच एक बाँध के रूप में किया गया और जयप्रकाश की मंशा कम्युनिस्टों को सुधारने की थी जबकि भाकपा के तत्कालीन महासचिव श्री पी.सी. जोशी संघर्ष के लिए एक मंच की तलाश में थे और काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को लड़ने के लिए एक मंच के रूप में प्रयोग करना चाहते थे।[5] हालांकि कम्युनिस्ट पार्टी से कुछेक एक सिद्धान्तकारों का मानना है कि भाकपा एवं काँसोपा के बीच समझौते के कारण ही बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना में इतना विलम्ब हुआ।

हालाँकि वर्तमान बिहार सचिव मंडल के सदस्य एवं बिहार कन्ट्रोल कमीशन भाकपा के अध्यक्ष श्री मोहन झा का कहना है कि भाकपा एवं कांसोपा के बीच समझौते जैसी कोई बात नहीं थी, वरन् उस समय ऐसी परिस्थिति ही नहीं थी कि बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी बन सके। बिहार के विभिन्न स्थानों में कम्युनिस्ट टोलियाँ थी मगर एक दूसरे से संपर्क नहीं था। पार्टी गैर कानूनी थी इसलिए वे खुलकर भी नहीं आ सकते थे। इसलिए 1939 तक पार्टी की बिहार में स्थापना नहीं हो सकी थी।[6]

बहरहाल जो भी हो अधिकांश कम्युनिस्ट नेताओं का मानना है कि लगभग 1936 में भाकपा के तत्कालीन महासचिव श्री पी.सी. जोशी एवं काँसोपा के तत्कालीन महासचिव श्री जय प्रकाश नारायण के बीच समझौता हुआ था कि हिन्दी भाषी प्रदेशों में यथा यू.पी., बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना अभी नहीं की जानी चाहिए और कम्युनिस्ट सदस्य काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में ही रहकर काम करें जो सही जान पड़ता है। हालाँकि अभी तक इस तरह के कोई लिखित दस्तावेज नहीं पाये जा सके हैं।

इसलिए भाकपा के पोलित ब्यूरो ने बिहार में पार्टी की इकाई फिलहाल नहीं बनाने का फैसला किया था। पार्टी में प्रवेश के इच्छुक बिहार के तमाम वामपंथियों को पार्टी के तत्कालीन महामंत्री श्री पी.सी. जोशी का एक ही आदेश था ''अच्छा काँग्रेस सोशलिस्ट बनो।''[7] इस आदेश का अनुपालन करते हुए श्री कार्यानन्द शर्मा, मंजर रिजबी, किशोरी प्रसन्न सिंह, शिव वचन सिंह, चन्द्रशेखर सिंह, इन्द्रदीप सिन्हा इत्यादि तो बिहार में भाकपा बनने पर भाकपा में आ गये मगर योगेन्द्र शुक्ल–जैसे लोग बराबर सोशलिस्ट ही रह गये।

काँसोपा एवं भाकपा के बीच मतभेद

आमतौर पर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी एवं भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के बीच विभिन्न सवालों पर मतभेद होते रहते थे। यह मतभेद कांग्रेस के मार्ग 1939 में सम्पन्न त्रिपुरी अधिवेशन में वामपंथी उम्मीदवार सुभाषचन्द्र बोस के कांग्रेस अध्यक्ष चुने जाने से और गहरा गया। श्री सुभाष बोस के अध्यक्ष पुनः चुन लिये जाने से दक्षिणपंथियों ने कांग्रेस के अंदर भयंकर संकट पैदा कर दिया। कांग्रेस वर्किंग कमिटी के 15 सदस्यों में से 12 दक्षिण–पंथी थे। महात्मा गांधी का दक्षिणपंथी उम्मीदवार पट्टाभिसीतारमैया थे। चुनाव में सुभाष चन्द्र बोस को 1575 तथा पट्टाभिसीतारमैया को 1376 वोट मिले थे।[8] गाँधीजी ने सितारमैया की हार को खुद अपनी हार बताते हुए कहा ''सुभाष के प्रतिद्वन्द्वी की हार स्वयं मेरी हार है।'[9]

गौरतलब है कि गांधीजी आजीवन कांग्रेस के सदस्य भी नहीं रहे और सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के निर्वाचित अध्यक्ष थे फिर भी दक्षिणपंथियों ने यह प्रस्ताव पास करवाया कि सुभाष बोस कार्यकारिणी मनोनीत करें परंतु जो गांधीजी को पसंद हो। वस्तुतः यह प्रस्ताव सुभाषचन्द्र बोस को इस बात का अल्टीमेटम था कि या तो उन्हें दक्षिणपंथियों की कठपुतली बनकर रहना होगा अन्यथा अध्यक्ष पद छोड़ना होगा। यह प्रस्ताव विषय समिति में 135 के विरुद्ध 218 वोटों से पास हो गया। कितने ही वामपंथी राष्ट्रवादियों और खासकर सोशलिस्टों ने इस अवसर पर ढुलमुलपन दिखाया था और प्रस्ताव के पक्ष में वोट दिया था।

कांग्रेस अधिवेशन के प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस वर्किंग कमिटी के सदस्यों के बारे में सुभाष ने गांधीजी से सलाह की लेकिन कोई फल नहीं निकला। सुभाष दक्षिण–पंथियों की कठपुतली बनने को तैयार न थे और दक्षिणपंथी उनके नेतृत्व को मानने को तैयार न थे। फलतः अप्रैल 1939 में ए.आई.सी.सी. के कलकत्ता अधिवेशन में सुभाष ने अध्यक्ष पर से इस्तीफा दे दिया।[10] दक्षिणपंथियों ने झटपट राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष बनाकर पूरा नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। शीघ्र ही दक्षिणपंथियों ने सुभाष के खिलाफ अनुशासन की कार्यवाही कर बंगला कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष पद से हटा दिया और फरमान जारी किया कि वह कांग्रेस में किसी भी पद पर तीन साल तक नहीं रह सकते।

दूसरा महत्वपूर्ण मतभेद कम्युनिस्ट पार्टी एवं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बीच द्वितीय महायुद्ध के संबंध में था जो दोनों पार्टियों के बीच एकता समाप्त करने का मुख्य कारण बना।

संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा बनाने का प्रयास

दूसरे महायुद्ध के पहले तक साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियाँ काफी ताकतवर हो चुकी थीं और उनकी एकता भी मजबूत हुई। मजदूरों, किसानों और अन्य श्रमजीवियों के आर्थिक आन्दोलन धीरे–धीरे राजनैतिक आंदोलन के साथ जुड़ते गये। ऐसे समय राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम को सफल क्रांति की ओर ले जाने की जरुरत थी। इसके लिए सबसे जरूरी था संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा, एक क्रांतिकारी कार्यक्रम और क्रांतिकारी नेतृत्व। कम्युनिस्टों ने इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए ''नेशनल फ्रंट'' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था। इसके संपादक थे पूरन चंद जोशी और संपादक मंडल में उनके अलावा अजय कुमार घोष, श्रीपाद अमृत डाँगे, भालचंद यंवक रणदिवे और मुजफर अहमद।[11] उनका घोषित लक्ष्य था साम्राज्यवाद के विरुद्ध मार्क्सवाद–लेनिनवाद के आधार पर संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की स्थापना के लिए हर तरह का प्रयत्न करना।

ऐसे संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे के लिए चार काम करना निहायत ही जरुरी था। पहला यह कि सभी समाजवादी ऐक्यबद्ध किये जायें, दूसरा यह कि सभी वामपंथियों की एकता कायम की जाय, तीसरा ऐक्यबद्ध जन संगठन स्थापित किये जायें और चौथा कांग्रेस को संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे में रूपांतरित किया जाए। वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट इन बातों को समझते थे और इसलिए उन्होंने इस दिशा में प्रायः चारों कदम एक साथ उठाने की कोशिश की। जन संगठनों की एकता कायम करने में वे सफल हुए। मजदूर आंदोलन की फूट प्रायः समाप्त हो गयी और ए.आई.टी.यू.सी. में फिर सब एकबद्ध हो गये। लेकिन अन्य तीन कार्यों में बहुत ज्यादा सफलता नहीं मिली।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि क्रांतिकारी शक्तियों की एकता के लिए सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों की एकता निहायत आवश्यक थी। उनकी एकता के बिना कोई भी संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा संभव न था। इस बात को गैर कानूनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतागण तथा

कॉंग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अधिकांश सदस्य और नेता समझते थे। इसलिए दोनों पार्टियों के प्रतिनिधियों को लेकर ''ऑल इंडिया कांटेक्ट कमिटी'' स्थापित की गयी थी। इसका उद्देश्य था दोनों पार्टियों के कार्यकर्ता मिलकर कार्य करें। कम्युनिस्ट पार्टी के अनेक सदस्य और कार्यकर्ता कॉंग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बने और उसे शक्तिशाली बनाया। वास्तव में वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट चाहते थे कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी मिलकर एक हो जायें और मार्क्सवाद–लेनिनवाद के आधार पर एक संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हो। लेकिन कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के मीनू मसानी, अशोक मेहता, राम मनोहर लोहिया और अच्युत पटवर्द्धन–जैसे लोगों का नेतृत्व मूलतः कम्युनिस्ट विरोधी था।

कम्युनिस्ट पार्टी चाहती थी कि कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता एक साथ मिलकर जगह–जगह पर काम करें, काम के जरिये एक दूसरे का विश्वास प्राप्त करें और उनके बीच एकता कायम हो। अनुकूल अवसर आने पर दोनों पार्टियों को मिलाकर एक कर दिया जाए और इस नयी पार्टी का नाम ''संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी'' रखा जाए। वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट उनकी इस योजना का समर्थन करते थे। चूँकि दक्षिणपंथी कॉंग्रेस सोशलिस्ट नेता ऐसी एकता नहीं चाहते थे इसलिए वे असंभव प्रस्ताव रखते थे। उन्होंने कहा कि वे भी चाहते हैं कि कम्युनिस्ट पार्टी और कॉंग्रेस सोशलिस्ट पार्टी मिलकर एक हो जाये। कम्युनिस्ट पार्टी अपना सिद्धान्त और अपना कार्यक्रम छोड़, कॉंग्रेस छोड़, कॉंग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सिद्धान्त और कार्यक्रम को अपना ले और वह अपने को भंग कर दे और उसके सारे सदस्य कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बन जायें।[12] अगस्त 1937 में उन्होंने ये शर्ते रखी और अपने को मार्क्सवादी घोषित किया।

अप्रैल 1938 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का चौथा सम्मेलन लाहौर में हुआ। इस सम्मेलन में दक्षिणपंथी सोशलिस्ट अल्पमत में रहते हुए भी नेतृत्व में आ गये।

मीनू मसानी जैसे दक्षिणपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट नेताओं ने सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों की एकता को तोड़ने के लिए एड़ी–चोटी का पसीना एक कर दिया। 1938 में मीनू मसानी ने तो एक दस्तावेज भी प्रचारित किया जिसका नाम दिया ''कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के विरुद्ध कम्युनिस्टों का षडयंत्र।'' इस दस्तावेज में उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के एक गुप्त सर्कुलर को उद्धृत किया और उसी के आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को अंदर से तोड़ने और कमजोर बनाने का षडयंत्र कर रहे हैं।[13]

मीनू मसानी द्वारा प्रचारित कम्युनिस्ट पार्टी के इस सर्कुलर में पार्टी ने अपनी सभी कमिटियों और सदस्यों को आदेश दिया था कि वे कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों की एकता को मजबूत करने के लिए जी–जान से कोशिश करे जो कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अंदर काम करते हैं वे उसे लोकप्रिय और मजबूत करें तथा अपने कार्यों द्वारा अपने विरोधियों का भी विश्वास प्राप्त करें। इसके अलावा पार्टी ने आशा व्यक्त की थी कि इस तरह एक साथ काम करने से एक दिन दोनों पार्टियों के बीच मतभेद दूर हो जायेंगे और दोनों को मिलाकर एक सोशलिस्ट पार्टी बन जायेगी।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दक्षिणपंथी नेताओं की इन चालों के बावजूद सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों के बीच बढ़ता सहयोग देख, जुलाई 1939 में मीनू मसानी, अशोक मेहता, राम मनोहर लोहिया और अच्युत पटवर्द्धन ने पार्टी की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया और खुलकर अपना कम्युनिस्ट विरोधी रूप जाहिर किया। उन्होंने समाचारों में बयान दिये और आरोप लगाया कि कम्युनिस्ट अनुप्रवेश बहुत ज्यादा हो गया है तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों के स्वतंत्र विकास में बाधा डाल रहा है।

भाकपा का द्वितीय महायुद्ध के चरित्र के संबंध में विचार :

इस प्रकार से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दक्षिणपंथी नेतृत्व ने कम्युनिस्ट सोशलिस्ट एकता को आखिर तोड़ ही दिया। इस दक्षिणपमंथी कांग्रेस सोशलिस्टों का आक्रमण कम्युनिस्टों पर उस समय और तेज हो गया जब भाकपा ने द्वितीय विश्वयुद्ध को ''साम्राज्यवादी युद्ध'' कहा। कम्युनिस्ट पार्टी के पोलित ब्यूरो ने एक बयान देकर युद्ध के बारे में अपनी नीति स्पष्ट की और बताया कि ऐसी हालत में क्रांतिकारी शक्तियों का काम क्या है। युद्ध के चरित्र के बारे में उसने कहा ''यूरोप में आजकल जो युद्ध चल रहा है वह फासिज्म के खिलाफ जनतंत्र का युद्ध नहीं है। वह साम्राज्यवादी युद्ध है, दूसरा साम्राज्यवादी युद्ध, 1914–1918 के विगत

महायुद्ध का वारिस और उत्तराधिकारी है।'' पोलित ब्यूरो के बयान में आगे कहा गया कि ''राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए युद्ध के संकट का क्रांतिकारी उपयोग नये काल में राष्ट्रीय शक्तियों के सामने यही केन्द्रीय काम हैं। साम्राज्यवादी युद्ध को राष्ट्रीय मुक्ति के युद्ध में बदलने की संभावना वर्तमान है।''[14] अर्थात् कम्युनिस्ट पार्टी ने साम्राज्यवादी युद्ध को राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध में बदलने की सारी क्रांतिकारी शक्तियों को एक मोर्चा पर लाने, जन आंदोलन को क्रांतिकारी रूप देने, गाँधीवादी तकनीक की बेड़ियों को तोड़ फेंकने और राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम को सफल बनाने का नारा बुलन्द किया।

दूसरी ओर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का दृष्टिकोण इससे भिन्न था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान युद्ध में भारतीय सहभागिता का पार्टी ने डँटकर विरोध किया और यह घोषणा की कि भारत को युद्ध में किसी भी रूप में भाग नहीं लेना चाहिए। वे किसी भी तरह ब्रिटेन की हार चाहते थे क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वस्त होने के बाद ही वे भारत की स्वतंत्रता की आशा करते थे। स्वभावतः ''दुश्मन का दुश्मन हमारा दोस्त'' की भावना से ये मुक्त न थे।[15] कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की समझ के बीच यही अंतर युद्ध के दूसरे दौर में उनके अलगाव का, अलग–अलग रास्तों पर जाने का कारण बना।

इस प्रकार काँसोपा और भाकपा के बीच का समझौता और एकता भंग हो गया। बिहार काँसोपा के मुखपत्र ''जनता'' ने ''स्तालिन के ये बेटे'' शीर्षक से लेख लिखकर कम्युनिस्टों को खुली गालियाँ दी।16 इसके बाद और कोई रास्ता नहीं था कि बिहार में भाकपा का गठन नहीं हो। फलतः 20 अक्टूबर 1939 को भाकपा की प्रान्तीय इकाई का गठन किया गया।

अब सवाल उठता है कि बिहार में भाकपा की प्रान्तीय कमिटी गठित करने का क्या आधार था और कैसे लोग कम्युनिस्ट पार्टी में आये?

किसान सभा, छात्र संघ तथा ट्रेड यूनियनों में पार्टी के कार्यकर्ताओं को विभिन्न तरीकों से सरकारी दमन का मुकाबला करते हुए आगे बढ़ना पड़ा। इस जंगजू संघर्ष का ही परिणाम था कि 1940 के अंत एवं 1941 के शुरू होते–होते काँसोपा तथा नव निर्मित फारवर्ड ब्लॉक से कुछ कार्यकर्ता कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये।

9 जनवरी, 1941 के छात्र संघ का सारण सबडिवीजनल कन्वेंशन हुआ जिसमें सरकारी एवं पुलिस दमन चक्र की तीव्र भर्त्सना की गयी तथा छात्रों से अपने जन आन्दोलन एवं जन संघर्ष तेज करने का अह्वान किया गया। फलतः कई स्कूलों एवं कॉलेजों में छात्रों की सफल हड़ताल हुई। दूसरी तरफ इस बार भी 26 जनवरी को बड़े पैमाने पर छात्रों द्वारा पूर्ण ''स्वाधीनता दिवस'' मनाया गया।

जैसा कि ऊपर के पाराग्राफों में जिक्र किया जा चुका है कि किसान मोर्चे पर कम्युनिस्ट कार्यकर्ता पूरी तरह सक्रिय थे, मार्च 1941 में किसान सभा ने ''टैक्स नहीं, लगान नहीं'' का नारा देकर किसानों के आन्दोलन को तेज किया जिसमें कई किसान नेता गिरफ्तार कर लिये गये। स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने जेल से निकलते ही दरभंगा के लगमा गाँव में किसानों की एक आम सभा की जिसमें सरकारी आँकड़ों के अनुसार 7000 से अधिक लोगों ने भाग लिया। इसमें भाकपा ने अहम भूमिका निभायी।

इस प्रकार से 20 अक्तूबर, 1939 की भाकपा की बिहार इकाई को स्थापना की गयी। अपने स्थापना काल के एक–डेढ़ साल बाद ही भाकपा बिहार में प्रमुख शक्ति के रूप में उभर कर सामने आयी। किसान सभा और छात्र संघ पर भाकपा का लगभग कब्जा हो गया था। भाकपा बिहार में निर्णयक शक्ति की ओर बढ़ रही थी।

सन्दर्भ सूची

1. इन्द्रदीप सिंह, बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी का विकास, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी प्रकाशन, जनशक्ति प्रिंटिंग प्रेस, पटना, प्रथम संस्करण, पृ. 1.
2. सुनील मुखर्जी, पार्टी जीवन की कुछ यादें, पटना (तारीख नहीं), पृ. 7.
3. कृष्ण चन्द्र चौधरी, बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म और विकास, पृ. 10.
4. सत्यव्रत राय चौधरी, लेफ्टिस्ट मूवमेंट इन इंडिया, 1917–1947, मिनर्वा पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1976, पृ. 32–33.
5. वी.पी. पाण्डेय, ''कांग्रेस समाजवादी पार्टी तथा अन्य वामपंथी दल'' संकलित, डॉ. सत्या एम.राय, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्व्यन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2013.

6. अशोक कुमार मंडल, बिहार में वामपंथी आंदोलन का इतिहास (1939–1960), जानकी प्रकाशन, पटना, 2003, पृ. 11.
7. इन्द्रदीप सिंह, बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी का विकास, पूर्वोक्त, पृ. 7.
8. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, मैक मिलन, 1977, पृ. 648.
9. उपरोक्त.
10. उपरोक्त .
11. शशि बैराठी, कम्युनिज्म एंड नेशनलिज्म इन इंडिया : ए स्टडी इन इंटर रिलेशनशीप 1919–1947, न्यू दिल्ली, 1989, पृ. 39.
12. उपरोक्त.
13. एल.पी. सिन्हा, लेफ्ट वींग इन इंडिया 1919–47, न्यू पब्लिशर्स, मुजफ्फरपुर, 1965, पृ. 15.
14. सुबोध राय, कम्युनिज्म इन इंडिया, अनपब्लिश्ड डॉक्यूमेंट्स, 1935–1945, पृ. 163.
15. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पूर्वोक्त, पृ. 678.